उपसंहार

उपसंहार

प्रस्तुत शोध में हिंदी कविता की परंपरा में स्त्री-कविता के साहित्यिक अवदान एवं चिंतन को क्रमबद्ध रूप में संयोजित किया गया है। स्त्रियों द्वारा रचित कविता को ही 'स्त्री-कविता' कहा गया है। स्त्री-कविता पदबंध नवीन काव्य-दृष्टि का द्योतक है। समकालीन मुद्दों, चुनौतियों और वैश्विक घटनाओं के प्रति एक सचेत स्त्री के रुख को जानना एक नवीन जीवन-दर्शन को जानना है। नौवें दशक के बाद उभरी स्त्री-कवियों ने अपनी कविताओं के जरिये समाज में व्याप्त धर्म-अर्थ-काम-मोक्ष संबंधी पुरुषवादी प्रपत्तियों को न सिर्फ प्रश्नांकित किया, बल्कि उन विषय-संदर्भों पर अपनी मौलिक दृष्टि का परिचय भी दिया है। साहित्य और इतिहास में हुए उपेक्षा भावों का रचनात्मक प्रतिरोध स्त्री-कविता का मूल लक्ष्य है। लोकतांत्रिक प्रक्रिया में अपने अधिकारों को आत्मसात करती स्त्री-कवियों ने अपने अलिखित-अवर्णित और ऐतिहासिक-सामाजिक विरासत को भी एक नयी पहचान दी है। समाज के वर्गगत व वर्णगत ढांचे ने स्त्रियों को दलितों में भी दलित अर्थात पूर्णतः हाशियाकृत बनाये रखा। ऐसे में दलित स्त्री की स्थिति और भी भयावह दिखती है। स्त्री-लेखन उन तमाम अनछुए सवालों से टकराता है जो उसे एक मनुष्य होने की पदवी से च्युत करता है। धार्मिक-सामाजिक जड़ीभूत रूढ़ियाँ हों या पितृसत्तात्मक रणनीतियाँ अथवा आधुनिक बाजारवादी नीतियों के दोहरे-तिहरे शोषण के जंजाल के बीच स्वयं के आत्मन् (Self) को अभिव्यक्त करना और उन दुरभिसंधियों से बच निकलना आसान नहीं है। लेकिन शिक्षा का प्रसार, वैज्ञानिक चिंतन और वैश्विक क्रांतियों की उपादेयता से सीख लेती हुई कवयित्रियाँ बहनापा भाव से संसार भर की स्त्रियों से जुड़ती हैं। इस उपक्रम में कविता उनकी सखी भाव की साक्षी बनती है।

समकालीन हिंदी कविता में स्त्री-कवियों की आत्माभिव्यक्ति कविता के एक नये सौंदर्यलोक को स्थापित करती है। स्त्री-कविता महज साहित्य की एक विधा भर नहीं है, बल्कि वह सामाजिक गतिविधियों का दस्तावेज़ भी है जिसे स्त्री-जीवन के आलोक में देखे जाने की

जरूरत है। समकालीन स्त्री-कविता का स्वर विविधरंगी होने के साथ ही सर्वसमावेशी भी है। गगन गिल, कात्यायनी, अनामिका, सविता सिंह, शुभा, अनीता वर्मा, नीलेश रघुवंशी, रंजना जायसवाल, रजनी तिलक, सुशीला टाकभौरे, निर्मला पुतुल, वंदना टेटे आदि कवयित्रियों का काव्य-संसार जीवन के उस अध्याय का रूपक है जिसे आज तक हमसे दूर रखा गया। एक ऐसी दृष्टि जो मनुष्य जाति की विकास यात्रा व उपलब्धियों को संदेह के घेरे में ला खड़ा करती है। परिवार-समाज तथा राष्ट्र में स्त्री की अवस्थिति, उनकी नियति इन कविताओं में साफ झलकती है। समाज की अलग-अलग सरणियों की जीवटता, क्रूरता, सौंदर्य आदि सभी वृत्तियाँ इन कविताओं के लोक को आधुनिकता और परंपरा के द्वंद्व से बाहर निकालती हैं और उन्हें एक प्रजातांत्रिक स्वरूप देती हैं। स्त्री समुदाय की आशा, आकांक्षा व अस्मिता संबंधी विमर्शों को नयी रोशनी देती हुई इन कवयित्रियों ने पुरुषत्व और स्त्री-पुरुष संबंधों को एक नवीन भाष्य दिया है। कविता के साथ-साथ अपने विचारपरक निबंधों में इनका चिंतन देहरी से वैश्विक पटल पर चल रही चिंताओं को भी अपने केंद्र में लाता है। देह से जुड़ी गुत्थियाँ, प्रेम और प्रकृति का स्वछंद राग तथा पुरुषवादी खेमे में बद्ध स्त्री के स्वत्वबोध को स्त्री-कविता अलग-अलग कलेवर एवं भाषिक विन्यासों में व्यक्त कर रही है।

गगन गिल ने अपनी कविताओं में वैश्विक मानवतावाद को स्थापित करते हुए स्त्री जीवन के गुह्य रहस्यों को, उसके जीवन के त्रासद रूपों को भावित किया है। उनके काव्यत्व का मूल दर्शन 'मानवीय अस्मिता' की खोज है। स्त्री जीवन के दैहिक-मानसिक पीड़ाओं एवं आकांक्षाओं से वे निरंतर संवाद करती हैं। बुद्धत्व, आत्म-संलाप, जन्म-मृत्यु, अवसाद-संताप और उत्कट प्रेम की लालसा उनकी कविता की केन्द्रीय विशेषता है। सांसारिक अनुभवों का संघर्ष व आत्म ज्ञान मनुष्यत्व बोध के लिए आवश्यक है। शास्त्र-पुराण या धार्मिक ग्रन्थों से इतर विशुद्ध भावना के स्तर पर स्त्री-पुरुष के अस्तित्व को समझना गगन गिल के चिंतन का मूल लक्ष्य है। इस लक्ष्य-प्राप्ति हेतु बुद्ध और टैगोर से उन्हें वैचारिक आस्थागत रोशनी मिलती है।

बाँझ, कुंवारी, विधवा, मातृत्व, ऋतुस्राव, विवाह, पतिव्रता आदि पितृसत्तात्मक संरचना में ऐसे संदर्भ हैं जिसने स्त्री-जीवन में हर्ष की जगह विषाद उत्पन्न किया है, उससे उसकी स्वाभाविकता को छीन लिया है। गगन गिल का पूरा काव्य संसार इन बिन्दुओं को अनुभूति के स्तर पर काव्यात्मक रूप देता है। प्रेम यहाँ स्वाभिमान की तरह मौजूद है।

कात्यायनी की कविता शोषित-दमित तथा हाशियाकृत समुदाय की बुलंद आवाज़ है। उनकी कविताओं में उपस्थित स्त्री पितृसत्तात्मक संरचना में सेंध लगाती है। स्त्री की ऐतिहासिक उपेक्षा का हिसाब मांगती, उनकी कविताएं समाकालीन हिंदी कविता की वैचारिक धरातल को नवीन आयामों से जोड़ती है। 'सात भाइयों के बीच चम्पा' से लेकर 'एक कोहरा पारभासी' तक की काव्य-यात्रा में स्त्री के समाजशास्त्र की स्पष्ट झलक दिखती है। कविता को क्रांति का जामा पहनाते हुए कवयित्री स्त्री-पुरुष संबंधों के सामाजिक-राजनीतिक विमर्शों में तब्दील करती है। कात्यायनी की कविता में प्रेम इंकिलाबी तेवर के साथ आता है। सर्वहारा से क्रान्ति की उम्मीद करती कविताएं सत्ता के पाखंड और अमानवीय नीतियों पर करारा प्रहार करती हैं। 'स्त्री' वर्ग एक सर्वहारा रूप में ही कविताओं में मौजूद है। साम्प्रदायिक और धार्मिक उन्माद के बीच मानव सभ्यता को बचा लेना ही कविता का केन्द्रीय सरोकार है। इसी सरोकार का काव्यात्मक रूप है कात्यायनी की कविता जो निरंतर एक इतिहासबोध निर्मित करता है। अपने समय की त्रासद स्थितियों से संघर्ष, प्रतिरोध की संस्कृति, प्रेम की उन्मुक्त उड़ान और मनुष्यता को बचाने का उपक्रम आदि कात्यायनी की कविता का मूल स्वर है। वामपंथी विचारधारा उनकी कविताओं को बौद्धिक चेतना से संपन्न करती है।

अनामिका की कविता लोकानुभवों से परिपूर्ण शिक्षित-अशिक्षित, गाँव-शहर, परिवार-समाज, घर-बाहर आदि सभी ध्रुवान्तों की बतरस का महाकाव्य है। उनकी भाषा का लोकरंग उनकी कविता को जीवंत बनाता है। भाषा, भाव, व्यवहार और सिद्धान्त में पैठी पुरुषवादी वृत्तियों को अनामिका बड़ी संजीदगी से आईना दिखाती हैं। स्त्री उनकी कविता का केंद्र है और

मानवता उसका विस्तार। परंपरा और आधुनिकता की नयी व्याख्या के साथ अनामिका स्त्री के मुकम्मल इतिहास की सर्जना करती हैं। पुरुष को अतिपुरुष और स्त्री को अतिस्त्री बनाने वाली सामाजिक-धार्मिक पौरुषिक नियामकों को कवयित्री भाषा की थपकन से खोलती है। पूँजी केन्द्रित बाजारवादी व्यवस्था में निरंतर ठगी जाती स्त्रियों की कथा हो या स्त्री के प्रति हिंसाविह्वल मानसिकता अथवा स्त्री को महज देह में सन्नद्ध करने की घृणित राजनीति आदि सभी पर अनामिका का चिंतन मौलिक होने के साथ ही वैश्विक भी है। वैश्विक बोध और स्त्री मनोविज्ञान का नवीन भाष्य है अनामिका की कविता। परंपरा, संस्कृति, मिथक और लोक में बसे स्त्री मन को अनामिका कविता में कथात्मक रूप देते हुए उसे विमर्श के केन्द्र में लाती हैं, उनसे संवाद का रिश्ता कायम करती हैं और एक ऐसी चेतना विकसित करती है जो पूरी दुनिया को एक धरातल पर ला सकें। बहनापा, साझा विकास और परस्पर सहयोग भाव द्वारा ही उस धरातल का निर्माण संभव है। कविता में रूपकों का अधुनातन प्रयोग अनामिका की काव्यात्मक प्रज्ञा को अधिक संप्रेषणीय बनाता है। स्त्री-भाषा को सिरजती अनामिका कविता के शिल्प को मुखर बनाती हैं।

स्त्री-मुक्ति या मुक्त स्त्री की छवि को कविता में प्रतिष्ठित करती सविता सिंह की कविताएं समकालीन स्त्री-कविता को जन सरोकारों से जोड़ती हैं। बौद्धिकता, तार्किकता तथा वैज्ञानिक चेतना से लैस सविता उन स्त्री संदर्भित कहानियों को स्वर देती हैं जो प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से बहस से वंचित कर दी जाती हैं। पितृसत्ता से सवाल करना, पुरुष निर्मित सभ्यताओं को कठघरे में लाना तथा सामाजिक-आर्थिक विषमताओं को परत-दर-परत खोलना उनका मुख्य प्रयोजन है। स्त्रीवादी निगाह से स्त्री अस्मिता एवं अस्तित्व को वैश्विक सभ्यता से जोड़ना तथा दुनिया भर की स्त्रियों से एक अंतरंग रिश्ता जोड़ना, उनके स्त्रीत्व को नवीन वैश्विक चेतना से जोड़ता है। रात, नींद, सपने और आकांक्षा आदि का किसी भी स्त्री की दिनचर्या में विशेष महत्व होता है। सविता सिंह की कविता इन स्थितियों से गुजरते हुए स्त्री मन की तहों को कविता में स्कैच की

तरह उतारती है। उनकी कविताएं एक नयी स्त्री की निर्मिति पर बल देती हैं जिसका वजूद पूरी तरह उसका अपना है। विदेशी भावभूमि पर लिखी उनकी कविताओं में भी स्त्री जीवन और उसका आभ्यंतर स्वरूप प्रमुखता से व्यक्त होता है। कविता के साथ रागात्मक संबंध बनाते हुए सविता सिंह प्रेम के रंग को स्त्री मुक्ति की मुहिम से जोड़ती हैं।

शुभा की कविता जेंडर और वर्ग विषमता को सीधे पुरुषवादी राजनीति का हिस्सा मानती है। जनतंत्र और सफेदपोश के भीतर पैठी आदमखोरी वृत्ति को शुभा ने सबसे अधिक उभारा है। सत्तातंत्र में छिपकर हिंसा करने वाली नीतियों ने स्त्री जीवन को कई जंजीरों में बाँधकर उसे नुमाइश में बदल दिया है। शुभा की राजनीतिक दृष्टि इन्हीं मसलों पर जाती है और वह उस छद्म को, उसके भीतर के घृणाभाव-स्त्रीद्वेष-स्त्री हिंसा भाव को, उन्हीं की शब्दवली में कविता में व्यक्त करती हैं। सभी धर्मों, जातियों और साम्प्रदायिक हिंसा में भयानक दैहिक-मानसिक हिंसा की शिकार होती स्त्री की पीड़ा व आर्तनाद का बोध किसी के पास नहीं; स्त्री देह अब भी उपहास और हंसी की सामग्री बनायी जा रही है। यह एक पितृसत्तात्मक रणनीति है जिसमें सभी को अनुकूलित किया जा रहा है। यह हत्या, बलात्कार, यौन-शोषण, हिंसा आदि को भी सहज मान लेती है। शुभा इस भयावह स्थिति को धिक्कारती हैं। धर्मभीरु ब्राह्मणवादी मानसिकता इस फूहड़ता को आगे बढ़ाती है। शुभा की सामाजिक राजनीतिक चेतना इन संदर्भों को चुनौती देते हुए स्वाधीन स्त्री की चेतना को पुनर्स्थापित करती है। महापुरुष, शास्त्र, पुराण, मोक्ष, ब्रह्मचर्य, परिवार, संस्कृति, बौद्धिकता-मौलिकता, राष्ट्र, सैन्य, न्याय तथा अपराध-तंत्र व ज्ञान आदि की एकांगी व पुरुष सापेक्ष अवधारणा से पृथक एक सम्यक, सर्वग्रासी और संवेदीकृत अवधारणा की ओर उन्मुख होना ही शुभा की कविता का ध्येय है।

अनीता वर्मा की कविताएं भी विगत तीन-चार दशकों में स्त्री को 'कठपुतली' बनाये जाने की बाजारवादी रणनीतियों का विरोध करती हैं। सघन संवेदनाओं को समेटती तथा विस्मृत हो चुके हृदयगत भावों को भी अनीता वर्मा पूरी सान्द्र अनुभूति से अपनी कई कविताओं में

व्यक्त करती हैं। स्त्री के आंतरिक एवं बाह्य संवेगों की लयात्मक शैली में रचित उनकी कविताएं अनदेखे, अनजाने प्रसंगों को जीवंत रूप में चित्रित करती हैं। वैश्वीकरण और टेलीविज़न जगत द्वारा वे स्त्री-देह को हथियार बनाना हो या स्त्री के रूप और यौवन की साजिशन सराहना हो अथवा स्त्री के स्वतंत्र विचार पर पहरा आदि सभी पूंजीवादी पितृसत्ता की नयी चाल है। अनीता वर्मा की कविताएं इन कूटनीतियों से बेखबर नहीं हैं। अपने समय के यथार्थ को कविता का, जीवन का यथार्थ बनाते हुए कवयित्री ने अपने सांस्कृतिक बोध को निर्मित किया है। स्त्री-पुरुष संबंध की प्राकृतिक उष्मा को बचाने के लिए जरूरी है - नदी, पहाड़, जंगल, रेत, आकाश, प्यार और प्रकाश भी बचे रहे। अनीता वर्मा की कविताओं में प्रकृति और प्रेम कोरस की भाँति मौजूद है। व्यापार और यांत्रिक हो चुकी दुनिया में 'एक सही संवेदना' की तलाश और उसकी ताकत की खोज कवयित्री बार-बार करती है।

स्त्री-कविता की परंपरा में नीलेश रघुवंशी की कविता परिवार बोध और भाषा की सहजता के कारण विशेष उल्लेखनीय है। प्रसव, मातृत्व और जन्म से जुड़ी अनुभवों की प्रामाणिक काव्यात्मक अभिव्यक्ति उनके काव्य संसार को अप्रतिम बनाती है। किसान, बेरोजगार युवा, नौकरीशुदा वर्ग, छोटे व्यवसायी और मध्यवर्गीय घर से निकली अकेली लड़की आदि के आत्मसंघर्ष को कविता का वर्ण्य विषय बनाती हुई कवयित्री पारिवारिक रिश्ते-नातों को प्रमुखता से रखती है। समकालीन हिंदी कविता में नीलेश के यहाँ बहुलांश में घरेलू परिवेश और पारिवारिक संबंधों से जुड़ी कविताएं हैं। उनके यहाँ गृहस्थ जीवन की ऊहापोह से कविता जन्म लेती है। पिता, भाई, बहन, माँ, बेटे आदि पर संवेदनशील कविताएं हैं। मध्यवर्ग, निम्नमध्यवर्ग के पारिवारिक-सामाजिक परिवेश, उसमें भी स्त्री की दिनचर्या, ख्वाइश, उम्मीद आदि को नीलेश जिस महीन दृष्टि से व्यक्त करती हैं, वह चित्र अथवा बिम्ब पूरे परिवेश को प्रतिबिम्बित करता है। सत्ता व वर्चस्ववादी राजनीति में लोकतंत्र के मूल्यों के क्षरण पर भी उनकी लेखनी जड़ व्यवस्था के समक्ष कई प्रश्न खड़े करती है। भारतीय परिवार-समाज में जन्म

से भेदभाव की शिकार हुई स्त्रियों की अंतर्कथाओं और अंतर्विरोधों के साथ-साथ पितृसत्ता की विभेदकारी नीतियों की संश्लिष्ट बुनावट को नीलेश की कविता अत्यंत सरल-सहज ढंग से प्रेषित करती है। उनका प्रेम भी पृथ्वी, आकाश और समुद्र की विराटता और उतनी ही सरलता के साथ आता है।

कवयित्री रंजना जायसवाल की कविताएं प्रेम, प्रकृति और स्त्री के जीवन-संघर्ष की सामूहिक अभिव्यक्ति है। साहित्य और विचार के क्षेत्र में निरंतर सक्रियता उनकी जनपक्षधरता को लोकोन्मुखी बनाती है। स्त्री में निहित प्रकृति की विरासत और प्रेम का उजास ही उनके लिए प्रतिरोध की आवाज़ बनती है। पितृसता और राज्यसत्ता के स्त्री पर एकाधिकार भाव एवं जड़ मानसिकताओं पर कवयित्री कड़े शब्दों में आलोचना करती है। परिवार-समाज को बिल्कुल सूक्ष्म रूपों को विमर्श का हिस्सा बनाना तथा शोषण-अन्याय के खिलाफ उठ रही आवाज को एकजुट करना इस अतिवाचाल समय में जरूरी है। रंजना जायसवाल की कविताएं पुरुषसत्ता, धर्मसत्ता और पूंजी केन्द्रित बाजारवादी शक्तियों का प्रतिवाद बड़े सूक्ष्म और स्थूल दोनों ही रूपों में करती हैं। संवाद, आत्मकथात्मकता तथा प्रश्नाकुलता उनकी कविताओं की मुख्य विशेषताएं है। अपने समय की तथाकथित महाशक्तियों, सत्तानवीसों, प्रकृतिभक्षक शक्तियों से जिरह करती हुई कवयित्री एक स्वतंत्र स्त्री की, स्वतंत्र स्त्री के चेतना को स्थापित करना चाहती है। बाजारवाद, उपभोक्तावाद तथा फैशन की रंगीन दुनिया की अंध स्वार्थलिप्सा की रीति पर कवयित्री का वैचारिक हस्तक्षेप उपभोक्तावादी संस्कृति के भयानक मंसूबे को नेस्तनाबूद करता है।

दलित स्त्रीवाद की प्रखर उद्घोषक कवयित्री रजनी तिलक और सुशीला टाकभौरे ने स्त्री-कविता को समाज के हाशियाकृत, दबे-कुचले और वंचित समुदाय से जोड़ा है। दलित स्त्री-कवियों की कविता स्त्री-जाति के स्वाभिमान की कविता है। पितृसत्ता और जातीय दंभ दोनों ही स्तरों पर शोषण की मार झेलती दलित स्त्री की व्यथा सामाजिक वैमनस्य की पड़ताल करती है।

दलित स्त्रियों का लेखन ही समाज में फैले अमानवीय शृंखलाओं, विभेदक नीतियों, जातिवाद, पुरुषवाद के खेल को सामने लाता है। दलित स्त्री की अस्मिता के सवाल को भी दलित स्त्री केन्द्रित रचनाओं ने विमर्श के केन्द्र में ला खड़ा किया। रजनी तिलक का लेखन दलित समाज और दलित स्त्री की अस्मिता के आत्मसंघर्ष का दस्तावेज़ है। बुद्ध, अम्बेडकर, ज्योतिबा फुले आदि से वैचारिक ऊर्जा ग्रहण करते हुए रजनी तिलक अपने समाज के युवाओं को सामाजिक न्याय व आत्मसम्मान के लिए आह्वान करती हैं। उनकी कविताएं जितनी दलित समाज की संघर्ष गाथा कहती हैं या स्त्रियों की अवस्थिति का रेखांकन करती हैं, उतनी ही गैर-दलित समाज में फैले जातिवादी मानसिकता से निकलने की ताकीद भी करती है। संविधान द्वारा प्रदत्त अधिकारों ने दलित समाज को एक नयी रोशनी दी है जिसके कारण आज वह विकास के पथ पर अग्रसर है। दलित स्त्री की यातना एवं संघर्ष को मुक्तिकामी चेतना से जोड़ना तथा समाज को सुंदर बनाना ही रजनी तिलक का काव्य प्रयोजन है।

सुशीला टाकभौरे की कविता अपनी सपाटबयानी में भी अम्बेडकर के संदेश व स्वप्न को प्रसारित करती है। सवर्णवादी-वर्चस्ववादी इतिहास या धार्मिक ग्रंथो में दलित जातियों के अपमान को भूल वे मनुष्यता की नवीन परिभाषा पर बल देती हैं। जातीय ग्रंथि के श्रेष्ठता बोध को वह बार-बार धिक्कारती हैं। अतीत में हुए अन्याय, नरसंहार, शोषण-दोहन की सवर्णवादी रणनीतियों को दलित विमर्श चर्चा के केन्द्र में लाता है। सुशीला जी को विमर्शों की दुनिया से अपार उम्मीदें हैं। अतः दलित विमर्श, स्त्री विमर्श और आदिवासी विमर्श आदि साहित्य के साथ-साथ समाज के ग्राफ को भी पूर्णता प्रदान करता है। भेदभाव, अपमान, कष्ट की अनगिनत कथाएँ एक विशेष जाति की मानसिक स्थिति को पूरी तरह कुचल देती हैं, ऐसे में उस वर्ग की स्त्री की दशा और भी दयनीय हो जाती है। रजनी तिलक हो या सुशीला टाकभौरे आदि सभी दलित स्त्री-कवियों ने दलित समाज में व्याप्त पुरुषवादी प्रवृत्तियों को भी उजागर किया है। श्रेष्ठता-हीनता, ऊंच-नीच आदि की भ्रामक व्याप्तियों से पृथक समतामूलक समाज की संकल्पना पर

उन्होंने ज़ोर दिया है। यह तभी संभव है जब सामाजिक परिवर्तन की लहर समाज के अंतिम तबके तक पहुंचे।

आदिवासी जीवन और साहित्य दोनों ही जीवन के प्रति नवीन दृष्टिबोध की आधारशिला को रचते हैं। अन्य विमर्शों की भाँति यहाँ भी सामाजिक-राजनैतिक संघर्ष की अनेक छवियाँ मौजूद हैं। जल, जंगल, जमीन और आदिवासी जुबान उसकी कहन शैली को अपरूप बनाती है। सत्ता व्यवस्था की कूटनीति ने आदिवासी समाज को हाशिये पर ला खड़ा किया है। निर्मला पुतुल की कविताएं 'संथाल परगना' के बहाने नष्ट किये जा रहे आदिवासी समुदाय की पीड़ा को शब्दबद्ध करती हैं। विकास के नाम पर आदिवासी भाषा, संस्कृति, संसाधन को नष्ट करना या उसका प्रदर्शन करना, उनके समाज के लोगों के साथ दुर्व्यवहार या भेदभाव करना सत्ता-व्यवस्था की नीति बन चुकी है। निर्मला पुतुल की कविताएं इन परिस्थितियों के खिलाफ क्रान्ति का रूप लेती दिखती हैं। आदिवासी स्त्री अस्मिता के प्रश्न को निर्मला पुतुल व्यापक मानवीय चेतना से जोड़ती हैं। दोहरा हाशियाकरण की शिकार आदिवासी स्त्री की पीड़ा और विद्रोह ही उनकी कविता में छनकर आता है। आदिवासियत उनकी कविता का केन्द्रीय तत्व है। बाजारवादी उद्योग नीतियों ने आदिवासी जनजीवन को सबसे अधिक दूषित किया है। सत्ता का गठजोर इसे और भी हिंसक रूप दे रहा है। आदिवासी स्त्रियों का यौन शोषण, बलात्कार, हत्या आदि ऐसी घटनाएं हैं जो लगातार बढ़ रही हैं। निर्मला पुतुल बतौर सामाजिक कार्यकर्ता सामाजिक न्याय के सवालों पर सत्ता व्यवस्था और मठाधीशों से लोहा लेती हैं। क्रान्ति, संघर्ष और परिवर्तन की आस के साथ ही निर्मला पुतुल की कविताओं का एक दूसरा परिदृश्य भी है जहां प्रेम और सौन्दर्य नवीन भंगिमाओं के साथ उपस्थित होता है। आदिवासी लोक संस्कृति और परिवेश ही प्रेम की पराकाष्ठा को उच्चतर भावभूमि देती है। प्रकृति के साथ गहरा तादात्म्य भाव ही पेड़-पौधे, पशु-पक्षी आदि को पारिवारिक सदस्य की गरिमा देते हैं। आदिवासी जीवन-दृष्टि सृष्टि में व्याप्त चर-अचर सभी की सत्ता को स्वीकार करते

हुए उसे जीवंत देखना चाहती है। प्रतिरोध का स्वर ही निर्मला पुतुल की कविताओं को प्रासंगिक बनाता है।

स्त्री-कविता का अस्मितामूलक विमर्शों से गहरा सरोकार है। स्त्री-कविता का दलित, आदिवासी अथवा अल्पसंख्यक स्वर इसकी आधारशिला को मजबूती प्रदान करता है। समाज का प्रत्येक हाशियाकृत वर्ग विषमता, असमानता और भेदभाव को अलग-अलग रूपों में झेलता है ; कहीं वह जातीय उत्पीड़न, कहीं आर्थिक विपन्नता तो कहीं वह लैंगिक पूर्वग्रहों के रूप में सामने आता है। समाज का तथाकथित बौद्धिक वर्ग हो या सामान्य वर्ग लैंगिक पूर्वग्रहों से ग्रस्त टिप्पणियाँ उनके जीवन का अहम हिस्सा हैं। स्त्री की देहाधारित वर्जनाएं अधिकांश पुरुष वर्ग में कूट-कूट कर भरी हुई हैं। कई बार इन प्रक्षिप्त वर्जनाओं की शिकार स्त्री स्वयं भी बनती दिखती है। पुरुषवादी आग्रहों से आछन्न स्त्री उन बेड़ियों को पीढ़ी-दर-पीढ़ी आगे बढ़ाती है। इसी अर्थ में स्त्रीवादी कविताएं स्वयं स्त्री समुदाय के लिए भी आत्मालोचन व आत्मावलोकन की एक आधारशिला को सिरजती हैं। भाषा का मनोछंद भी यहाँ पारंपरिक भाषा के आस्वाद से भिन्न है। स्त्री-कवियों की भाषा विषयक चिंतन व प्रयोग दोनों ही कविता को स्त्री व्यक्तित्व का पर्याय बनाता है। स्वतंत्रता, सहजता और स्वाभाविकता उसका प्राणतत्त्व है। भाषा में मातृमना दृष्टि का समावेश उसे एक अलग ताकत देता है। प्रेम की थपकन ही प्रतिरोध का आधार बनती है तथा हृदय परिवर्तन की आस जगाती है। स्त्री-कविता ने स्त्री-भाषा के सहारे भाषा के सेंस (Sense) को परिवर्तित किया है। भाषा में सेंस से आशय है आदेशमूलक, भाषणधर्मिता, स्त्री-द्वेष आदि वृत्तियों के स्थान पर पदानुक्रममुक्त संवादधर्मी सरल, सहज आत्मिकता का स्वीकार ; जो उन्हें जातीय स्मृतियों के मनोलोक से अनायास ही प्राप्त हो जाता है। भाषा वैज्ञानिक जिसे 'सिमियोटिक' पदबंध से अभिहित करते हैं, लोक साहित्य उन्हीं जातीय स्मृतियों का सृजनात्मक प्रतिफलन है। इस तरह स्त्री-कविता की भाषा स्त्री-कविता के मूल्यांकन

का एक शास्त्र भी है। अतः स्त्री-कविता भाषा, भाव और नवीन चेतना के सहारे निरंतर समाज को सुंदर बनाने का प्रयत्न कर रही है।